

## अध्याय – 1

शरतचन्द्र एवं प्रेमचंद की भूमिकाएं

- i) *स्वाधीनता आंदोलन की विविधता : बंगाल और संयुक्त प्रांत*
- ii) *शरतचन्द्र की व्यक्तिगत हिस्सेदारी*
- iii) *प्रेमचन्द्र की व्यक्तिगत हिस्सेदारी*

## स्वाधीनता आंदोलन की विविधता : बंगाल और संयुक्त प्रांत

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के अनेक कारण हैं। इस आंदोलन के पीछे राजनैतिक कारण तो थे ही, साथ ही सामाजिक कारण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं थे। आंदोलन के विविध पक्षों को उजागर करना ही इस अध्याय का केन्द्र बिंदु है। सन् सत्तावन के ऊर्जा से उर्जित भारतीय स्वाधीनता आंदोलन एक अखिल भारतीय आंदोलन था। हम कह सकते हैं कि यह आंदोलन त्रस्त भारतीय जनता की समस्याओं से उपजा एक व्यापक विस्फोट था। ये समस्याएं कुछ राजनैतिक थीं तो कुछ सामाजिक। अलग-अलग प्रांतों की सामाजिक विविधता के कारण ये समस्याएं भी अलग-अलग प्रकार की थीं।

नवजागरण की चेतना ने बंगाल में एक नये बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म दिया। इस आधुनिक शिक्षित वर्ग ने पुरानी रूढ़ियों और मान्यताओं को अपने तर्क से चुनौती दी। राष्ट्रीयता का बीज धीरे-धीरे अंकुरित हो रहा था। वेद, शास्त्रादि जैसे धर्म ग्रंथों को ये बुद्धिजीवी जस का तस मानने से इन्कार कर दिये। राममोहन राय ने वेदान्त की नई व्याख्या प्रस्तुत की। बंगाल में नव जन्मित बुद्धिजीवी वर्ग ने सुधारवाद और आधुनिकीकरण को लक्ष्य बनाया। डॉ. शंभुनाथ इस संदर्भ पर चर्चा करते हुए लिखते हैं। "भारत में नवजागरण की एक अंतर्धारा, सुधारवाद तथा आधुनिकीकरण के लक्ष्य लेकर चल रही थी, नेतृत्व में थे राजा राममोहन रॉय। वह भारतीय परंपरा की ओर एकांगी झुकाव के कारण केवल वेदांत को मानते थे और साम्राज्यवादी असर में पश्चिमीकरण पर बल देते थे। 1850 के बाद ब्रह्म समाजियों ने वेदांत को भी त्याग दिया।...भारत में नवजागरण की एक दूसरी धारा राष्ट्रवादी मुक्ति का लक्ष्य लेकर चल रही थी— संन्यासी, संथाल, भील, पोलिगार तथा कोल विद्रोह के भीतर से, जिसकी अंतिम परिणति हुई 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह में।" यद्यपि राष्ट्रीयता की रूपरेखा इस युग में बीज रूप में ही थी पर उसका प्रस्फुटन बाद के बुद्धिजीवियों में हुआ। बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ने राष्ट्रीयता के प्रश्न को ठोस रूपाकार प्रदान किया और फिर उसको अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। इन महान लेखकों ने राष्ट्रीयता को पुनः परिभाषित किया और जनमानस की चेतना को आंदोलित किया।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का जन्म (26 जून, सन 1938 में) एक परंपरागत और समृद्ध बंगाली परिवार में हुआ था। उनकी शिक्षा हुगली कॉलेज और प्रेसीडेंसी कॉलेज में हुई थी। 1857 में उन्होंने बी.ए. पास किया और 1869 में कानून की डिग्री हासिल की। इसके बाद उन्होंने सरकारी नौकरी कर ली और 1899 में सरकारी सेवा से रिटायर हुए। बंकिमचन्द्र चटर्जी की पहचान बांग्ला कवि, उपन्यासकार, लेखक और पत्रकार के रूप में है। उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'राजमोहंस वाइफ' है। यह कृति अंग्रेजी में है। उनकी पहली प्रकाशित बांग्ला कृति 'दुर्गेशनदिनी' मार्च 1865 में छपी थी। यह एक रूमानी रचना है। उनकी अगली रचना का नाम 'कपाल कुंडला' (1866) है। इस रचना को उनकी सबसे अधिक रूमानी रचनाओं में से एक माना जाता है। उन्होंने 1872 में मासिक पत्रिका 'बंग दर्शन' का भी प्रकाशन किया। अपनी इस पत्रिका में उन्होंने 'विषवृक्ष' (1873) उपन्यास का क्रमिक रूप से प्रकाशन किया। 'कृष्णकांतेर विल' में बंकिमचन्द्र ने अंग्रेजी शासकों पर तीखा व्यंग्य किया है। 'आनंदमठ' (1882) एक राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास में 1773 के 'संन्यासी विद्रोह' का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक में देश भक्ति की भावना विद्यमान है। बंकिमचन्द्र का अंतिम उपन्यास 'सीताराम' (1886) है। इसमें मुस्लिम सत्ता के प्रति एक हिन्दू शासक का विरोध दर्शाया गया है। उनके अन्य उपन्यासों में 'दुर्गेशनदिनी', 'मृणालिनी', 'इंदिरा', 'राधारानी', 'कृष्णकांतेर दफतर', 'देवीचौधरानी' और 'मोचीराम गौरेर जीवन चरित' शामिल है। उनकी कविताएं 'ललिता ओ मानस' नामक संग्रह में प्रकाशिता हुई। उन्होंने धर्म, सामाज और समसामयिक मुद्दों पर आधारित कई निबंध भी लिखे। बंकिमचन्द्र बहुमुखी प्रतिभा वाले रचनाकार थे। उनके कथा-साहित्य के अधिकतर पात्र मध्यमवर्ग के लोग हैं। इनके पात्र आधुनिक जीवन की त्रासदियों और प्राचीन काल की परंपराओं से जुड़ी दिक्कतों से साथ-साथ जूझते हैं। यह समस्या भारत भर के किसी भी प्रांत के शहरी मध्यम वर्ग के समक्ष आती है। लिहाजा मध्यम वर्ग का पाठक बंकिम के उपन्यासों में अपनी छवि देखता है। बंकिमचन्द्र अपने साहित्य में कल्पना को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। कल्पना द्वारा ही वे अपने पाठकों में राष्ट्रीयता की चेतना का संचार कर देते हैं। दरअसल बंकिमचन्द्र ने कथा-साहित्य में वही काम किया है, जो काम काव्य जगत में माइकल मधुसूदन ने किया है।

रवीन्द्रनाथ (7 मई, 1861) साहित्य जगत में गुरुदेव के नाम से जाने जाते हैं। वे विश्वविख्यात कवि, साहित्यकार, दार्शनिक और भारतीय साहित्य के एकमात्र नोबल पुरस्कार विजेता हैं। बांग्ला साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में वे नई जान फूंकने वाले युग द्रष्टा थे। वे एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी दो रचनाएं दो देशों का राष्ट्रगान बनीं। भारत का राष्ट्रगान जन-गण-मन... और बांग्लादेश का राष्ट्रीयगान आमार सोनार बांग्ला गुरुदेव की ही रचनाएं हैं। रवीन्द्रनाथ की आरंभिक पढ़ाई 'सेंट जेवियर स्कूल' में हुई। उन्होंने 'लंदन कालेज विश्वविद्यालय' में कानून का अध्ययन किया, लेकिन कुछ कारण वश वह बिना डिग्री हासिल किए ही वापस आ गये। टैगोर की रचनाओं में मनुष्य और ईश्वर के बीच जो चिरस्थायी संपर्क है वह अलग-अलग रूपों में उभरकर सामने आया। टैगोर और महात्मा गांधी के बीच राष्ट्रीयता और मानवता को लेकर हमेशा वैचारिक मतभेद रहा। जहां गांधी पहले पायदान पर राष्ट्रवाद को रखते थे, वहीं टैगोर मानवता को राष्ट्रवाद से अधिक महत्त्व देते थे। लेकिन दोनों एक दूसरे का बहुत सम्मान करते थे। टैगोर ने गांधी जी को 'महात्मा' का विशेषण दिया था। टैगोर के रूप में बंगाल को एक सशक्त साहित्यकार मिला। उनके काव्य में निहित भावनात्मक प्राण उस युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

प्रथम महायुद्ध और रूस की क्रांति ने भी बंगाल में व्यापक प्रभाव डाला। मजदूर वर्ग में अब एक नई चेतना जाग्रत हुई। तत्कालीन आर्थिक परिस्थिति और राजनैतिक वातावरण ने मजदूरों के संघर्ष में आग में घी का काम किया। वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि और स्थिर मजदूरी ने मजदूरों के गुस्से को और भड़काया। पूंजीपतियों के बढ़ते मुनाफे और मजदूरों की बढ़ती दयनीय स्थिति ने वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया। सन् 1918 के आस-पास मजदूरों की हड़ताल की एक लहर सी आ गई जिसने 1920 तक आते-आते पूरे प्रांत को अपने चपेट में ले लिया। धीरे-धीरे संपूर्ण भारत में मजदूर आंदोलन तीव्र और उग्र हो उठा। इन्हीं परिस्थितियों में 'ट्रेड यूनियन आंदोलन' प्रारंभ हुआ। भारतीय कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं ने 'यूनियनों' में अपना सक्रिय योगदान दिया। ये कार्यकर्ता मजदूरों को संगठित करने, उनके आर्थिक संघर्ष को मजबूती देने तथा मजदूर वर्ग को राष्ट्र मुक्ति आंदोलन का महत्त्वपूर्ण असरदार हिस्सा बनाने में सर्वाधिक एवं महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

अंग्रेजों की नीतियों से किसान भी अछूते न रहे। दिन प्रतिदिन सरकार के

लूट की नई-नई नीतियों से वे तबाह हो गए। अंग्रेजी राज्य में किसानों का उत्पीड़न सामंती राज्य से कई गुना अधिक असहाय और दर्दनाक था। खेती के साथ-साथ अब किसानों से जमीन भी छिनने लगी थी। आय का मूल स्रोत ही धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। यह एक बड़े आंदोलन का पूर्वाभास था।

बंगाल में 'किसान आंदोलन' का पहला संगठित एवं व्यापक रूप, 'नील आंदोलन' (1859-60) से देखने को मिला। उत्पादक किसानों से जबरदस्ती नील की खेती कराने पर जोर दे रहे थे। नील की मांग विदेशी बाजारों में जोरों पर थी। इन उत्पादकों को सीधा-सीधा ब्रिटिश सरकार का संरक्षण प्राप्त था। किसान अपनी उपजाऊ भूमि पर धान की खेती करना चाहते थे, किंतु उत्पादकों को 'नील' की खेती में अधिक रुचि थी। नील की खेती से जमीन की उर्वरक शक्ति भी कम होने लगी। नील की खेती से किसानों को काफी घाटा हुआ जबकि धान से उन्हें बेहतर दरें मिलती थीं। अंततः किसानों का गुस्सा आपे से बाहर हो गया और वे सशस्त्र आंदोलन पर उतर आए। किसानों ने उत्पादक पूंजीपतियों के साथ-साथ सरकार से भी लोहा लिया। 1860 ई. के आस-पास बंगाल में नील की खेती पूरी तरह खत्म हो गई। इसके बाद अन्य प्रांतों में छिटपुट आंदोलन हुए किन्तु ये उतने व्यापक और उग्र नहीं थे। सन् 1946 के आस-पास 'तेभागा आंदोलन' के रूप में एक सशस्त्र आंदोलन ने जन्म लिया। बटाईदारों ने ऐलान किया कि वे कर के रूप में अब उपज का आधा हिस्सा नहीं बल्कि एक-तिहाई हिस्सा ही देंगे। दूसरी ओर बंगाल के आदिवासी यह मांग कर रहे थे कि उनसे लगान उपज के रूप में नहीं बल्कि मुद्रा के रूप में ली जाए। यह आंदोलन भी हिंसक रूप से लड़ा गया। दिनाजपुर, रंगपुर, जलपाईगुडी, मिदनापुर तथा 24 परगना इस आंदोलन के केन्द्र में रहे। कृष्ण विनोद रॉय, अवनी लाहिरी, सुनील सेन, भवानी सेन, मोनी सिंह, विभूति गुहा, अजित रॉय, सुशील सेन, समर गांगुली आदि इस आंदोलन के प्रमुख नेता थे।

संयुक्त प्रांत की समस्याएं बंगाल की तुलना में अधिक जटिल थीं। सामंतवाद, साम्राज्यवाद के दोहरे शोषण से हिन्दी प्रदेश जल रहा था। राजा राममोहन राय, विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन आदि के रूप में जो बड़े महापुरुष बंगाल को विरासत में मिले थे, उसका अभाव हिन्दी प्रदेश में देखा गया। बंगाल और संयुक्त प्रांत के बीच नवजागरण की चेतना में शताब्दी का अंतर है। डॉ. बच्चन सिंह ने अपने इतिहास में

इस तथ्य की ओर संकेत किया है। अतः विद्रोह का जो रूप हम बंगाल में पाते हैं, वह रूप हिन्दी प्रदेश में नहीं था। बुद्धिजीवियों का जो वर्ग बंगाल में नवोदित हुआ था, हिन्दी प्रदेश में उसका अभाव साफ लक्षित किया गया। शिक्षा के अभाव में हिन्दी प्रदेश में राजनीतिक जागरुकता विरल रही। नतीजतन इस समय हिन्दी प्रदेश में कोई बड़ा आंदोलन देखने को नहीं मिलता है। हिन्दी प्रदेश के किसान लगभग उन्हीं समस्याओं से जूझ रहे थे, जिससे की बंगाल के किसान, परंतु 'नील आंदोलन' जैसा कोई विराट विस्फोट हिन्दी प्रदेश में नहीं हुआ। यह सारी परिस्थितियां आगे के लिए एक विराट आंदोलन की नींव तैयार कर रही थी। जहां तक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है, तो इसमें कोई शक नहीं कि बंगाल एवं संयुक्त प्रांत की सामाजिक व्यवस्था में काफी अंतर था। अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, धार्मिक रुढ़ि जैसे कुछ प्रश्नों से दोनों प्रांत घिरे हुए थे। किन्तु एक तरफ जहां इन कुप्रथाओं के विरुद्ध बंगाल में तीव्र विद्रोह भड़क रहा था, वहीं संयुक्त प्रांत इन प्रश्नों से उदासीन था। 'सतीप्रथा', 'बालविवाह', 'बेमेल विवाह', 'स्त्री शिक्षा' आदि समस्याओं से टकराते हुए बंगाल के बुद्धिजीवी वर्ग ने समाज को आंदोलित किया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज जैसे शिक्षित संगठनों ने धर्म की पुर्नव्याख्या प्रस्तुत की। पढ़ी लिखी युवा पीढ़ी को धर्म के नए रूप से साक्षात्कार कराया। जिन समस्याओं पर बंगाल में खुलकर बहस और विरोध हो रहा था, संयुक्त प्रांत उन्हीं समस्याओं के बंधनों में जकड़ा हुआ था। कुप्रथाओं के मामले में संयुक्त प्रांत में चेतना शून्य दृष्टि लक्षित की गयी। आम जनता पर पुजारियों और धर्म के अन्य ठेकेदारों का जबरदस्त प्रभाव था। धर्म के नाम पर खुली लूट मची थी। आध्यात्मिक ज्ञान के बहाने लोगों को गुमराह किया जा रहा था। यहां तक कि इन पाखंडियों की यौन तुष्टि के लिए महिलाएं अपने आप को समर्पित करने में तनिक भी लज्जा महसूस नहीं करती थीं। लड़की का जन्म परिवार में अशुभ समझा जाता था। कभी-कभी पति की मृत्यु के बाद विधवाओं के लिए बाह्य जगत में कोई स्थान न था। काशी ही उनका एकमात्र शरणदाता था। जाति प्रथा आर्थिक शोषण का एक मुख्य हथियार बन गयी थी। निम्न तबकों तथा शूद्रों पर शोषण दिनों दिन बढ़ता चला जा रहा था।

ये सारी समस्याएं धीरे-धीरे एक विराट आंदोलन के लिए भूमि तैयार कर रहीं थीं। राजनीतिक स्वाधीनता तो युग की मांग थी ही, साथ ही 'सामाजिक मुक्ति' के

महत्त्व को भी समझा जाने लगा। दरअसल सामाजिक मुक्ति ही अधिक महत्त्वपूर्ण थी। इतिहासकार भी इस बात से एकमत हैं। ("The Social factors became an integral part of the nationalist movement. Political circumstances helped or were an added factor, but essentially, the beginning of a National Movement was a Social urge. The Social reformers were, in fact, premier in the task of national independence from alien domination. They had pointed out that the institution of caste, the evil of society, must give way before the progressive ideas of liberty and democracy.") ("Freedom movement in india", K.N.Jha page-38)

बहरहाल ये समस्याएं इतनी गंभीर और जटिल थी कि स्वाधीनता संघर्ष में इसे शामिल किए बिना स्वाधीनता निरर्थक और खोखला साबित होती। अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्र मुक्ति आंदोलन के वास्तविक सिपाही किसान मजदूर और कारीगर थे। बुद्धिजीवी और समाज सुधारक इनके साथ थे। ये लोग आंदोलन को सही दिशा प्रदान कर रहे थे, जिससे राष्ट्र मुक्ति आंदोलन अधिक पैना और जुझारू बनता चला जा रहा था।

## शरतचन्द्र की व्यक्तिगत हिस्सेदारी

शरतचन्द्र बांग्ला के सुप्रसिद्ध और विख्यात उपन्यासकार है। उनका जन्म हुगली जिले के देवानंदपुर में हुआ। अठारह साल की अवस्था में उन्होंने इंटरेंस पास किया। इन्हीं दिनों उन्होंने 'बासा' (घर) नाम से एक उपन्यास लिख डाला, पर यह रचना प्रकाशित नहीं हुई। शरतचन्द्र पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर और बंकिमचन्द्र का गहरा प्रभाव है। शरतचन्द्र ललित कला के छात्र थे, लेकिन आर्थिक तंगी के चलते वे इस विषय की पढ़ाई आगे नहीं कर पाये। रोजगार की तलाश में शरतचन्द्र बर्मा गये और लोक निर्माण विभाग में क्लर्क के रूप में काम किया। कुछ समय बर्मा रहकर कलकत्ता लौटने के बाद उन्होंने गंभीरता से लेखन कार्य शुरू कर दिया। बर्मा से लौटने के बाद उन्होंने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'श्रीकांत' की नींव रखी। बर्मा में उनका संपर्क बंगचंद्र नामक एक व्यक्ति से हुआ। बंगचन्द्र शराबी होने के बावजूद बड़े विद्वान थे, यहीं से शरतचन्द्र के मन में चरित्रहीन का बीज पड़ा, जिसमें मेस जीवन के वर्णन के साथ मेस की नौकरानी से प्रेम की कहानी है। शरतचन्द्र ने अनेक उपन्यासों का सृजन किया जिनमें 'पंडितमोशाय', 'बैकुंठेरबिल', 'मेजदीदी', 'दर्पचूर्ण', 'श्रीकांत', 'अरक्षणीया', 'निष्कृति', 'मामलार फल', 'गृहदाह', 'शेषप्रश्न', 'दत्ता', 'देवदास', 'ब्राह्मण की लड़की', 'विप्रदास' 'देना पावना', आदि प्रमुख हैं। बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन को लेकर "पथेरदाबी" उपन्यास लिखा गया। पहले यह 'बंगवाणी' में धारावाहिक रूप से निकला, फिर पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ। इसके तीन संस्करण तीन महीने में ही खत्म हो गए। इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने इसे जब्त कर लिया। शरतचन्द्र बांग्ला के ऐसे उपन्यासकार है जिनकी रचनाएं भारत की लगभग सभी भाषाओं में अनूदित हैं। कहा जाता है कि उनके पुरुष पात्रों से उनकी नायिकाएं अधिक बलिष्ठ हैं। शरतचन्द्र की जनप्रियता उनकी कलात्मक रचना और नपे तुले शब्दों या जीवन से ओतप्रोत घटनावलियों के कारण नहीं है बल्कि उनके उपन्यासों में नारी जिस प्रकार परंपरागत बंधनों में छटपटाती हुई दृष्टिगोचर होती हैं, जिस प्रकार पुरुष और स्त्री के संबंधों को एक नये आधार पर स्थापित करने के लिए पक्ष प्रस्तुत किया गया है, उसी से शरतचन्द्र को इतनी जनप्रियता मिली। उनकी



रचनाएँ में हृदय के सारे तत्व होने पर भी उनमें समाज के संघर्ष, शोषण आदि पर कम प्रकाश पड़ता है। 'पल्लीसमाज' में समाज का चित्र कुछ-कुछ सामने आता है। महेश आदि कुछ कहानियों में शोषण का प्रश्न उभरकर सामने आता है। शरतचन्द्र महान साहित्यकार होने के साथ-साथ एक कुशल नेता भी थे। उनका संबंध राजनैतिक मंच से गहरे रूप से था। वह एक सच्चे देशभक्त और कुशल नेता थे। उनके निधन पर शोक प्रकट करते हुए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था भारतवर्ष ने केवल मात्र एक श्रेष्ठ साहित्यकार को ही नहीं खोया है, बल्कि कांग्रेस का एक शक्ति स्तंभ भी खो दिया है। कलकत्ता के लोग (खासकर हावड़ा-शिवपुर) आज भी शरतचन्द्र के जोशीले भाषण से परिचित हैं। सन् 1919 में 'डायर' के कुकार्य से संपूर्ण भारत वर्ष में स्वाधीनता आंदोलन तीव्र और उग्र हो उठा। गांधी जी के नेतृत्व में स्वाधीनता आंदोलन को काफी बल मिला और देखते ही देखते पूरा भारत एकजुट होने लगा। स्वाधीनता का संघर्ष पूरे भारत में एक लहर की तरह फैल गया। शरतचन्द्र इस महायुद्ध के एक योद्धा थे। वे पूर्ण स्वराज्य के पक्षधर थे। उनका साफ कहना था, भारत का शासन भारतवासियों के हाथ में ही रहना चाहिए और इस जिम्मेदारी से जो वंचित करता है वह अन्यायी है।<sup>2</sup>

शरतचन्द्र हावड़ा जिले की कांग्रेस कमेटी के सभापति रह चुके थे। इसके अलावा वे बंग प्रादेशिक राष्ट्रीय समिति के भी सभापति रहे थे। अखिल भारत कांग्रेस कमेटी के गया अधिवेशन में भी शरतचन्द्र ने भाग लिया था। देश बंधु चित्तरंजन दास के साथ उन्होंने संगठित रूप से कार्य किया तथा कई कांग्रेसों में हिस्सा लिया। मतैक्य न होने के कारण शरतचन्द्र ने कांग्रेस सभापति के पद से इस्तीफा दे दिया (14 जुलाई, सन् 1931) 1936 ई. में 'सांप्रदायिक बंटवारा' के प्रति रवीन्द्रनाथ ने कलकत्ता टाउन हॉल' में अपना विरोध प्रकट किया, उस प्रदर्शन में शरतबाबू भी शामिल थे। 'टाउन हॉल' में दिए गए भाषण में शरतचन्द्र ने कहा "नया शासन विधान शुरू से आखिर तक खराब है, उस असीम खराबी के अंदर बंगाल के हिन्दू सबसे अधिक क्षतिग्रस्त हुए हैं, कानून की कील ठोककर उन्हें सदा के लिए छोटा कर दिया गया है। फिर भी यह सच है कि देश के मुसलमान भाइयों को दस-पंद्रह अधिक स्थान मिले हैं, इससे उनके प्रति हमारे अंदर क्रोध नहीं है। लेकिन जो लोग इस अन्याय के जनक हैं उनसे कहना चाहता हूँ कि अन्याय, अविचार, एक आदमी के

प्रति होने पर भी वह अकल्याणकार है, उससे अंत तक मुसलमान, हिन्दू, जन्मभूमि किसी का कल्याण नहीं होगा।” (15 जुलाई, 1936)

इसी उद्देश्य से बाद में 'एडवर्ड हॉल' में भी सभा का आयोजन किया गया, यहां शरतचन्द्र ने अपने 'टाउन हॉल' में दिए गए वक्तव्य को आगे बढ़ाया —“नये शासन विधान में भारत वर्ष के हिन्दू, विशेषकर बंगाल के हिन्दुओं के प्रति जो अविचार किया गया है, इतना बड़ा अविचार दूसरा नहीं हो सकता। बहुतेरे लोग यह सोच सकते हैं कि इस अविचार के प्रतिवाद करने की क्षमता हमारे हाथ में नहीं है और यही सोचकर वे निश्चेष्ट रहेंगे, प्रतिवाद नहीं करेंगे लेकिन यह सच नहीं है। लेकिन अगर इस अन्याय को रोकने की क्षमता किसी में है तो हमी में है।... बांगला साहित्य को विकृत करने की एक हीन चेष्टा चल रही है, कोई कह रहा है कि संख्या के अनुपात में भाषा के अंदर इतने अरबी शब्दों का व्यवहार करें। कोई कह रहा है इतने फारसी शब्दों का व्यवहार करें, और कोई कह रहा है कि इतने उर्दू शब्दों का व्यवहार करें, इसका कोई कारण नहीं है। जैसे छोटे बच्चे के हाथ में चाकू पड़ते ही वह घर की सारी चीजों को काटता फिरता है यह भी वैसा ही है।... आज अगर वे समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने उन्हें दे दिया, इसलिए मिला। एक दिन वे समझेंगे कि यह कितनी बड़ी भूल है।

मैं अपने मुसलमान भाइयों से कहता हूँ कि तुम लोग संस्कृति पर नजर रखना, साहित्य पर नजर रखना। छोटे बच्चों की तरह हाथ में तेज चाकू पाकर सब कुछ काट मत डालना। मेरा मत है कि अन्याय को अस्वीकार करना चाहिए, यथा साध्य प्रतिकार करना चाहिए। इसी से मनुष्य बनता है। हमारे ऊपर यह जो अन्याय हो रहा है उसका प्रतिकार करना ही होगा। अगर नहीं कर सकते तो दस साल के बाद बंगाली आज जिस बात को लेकर गौरव करते हैं, उसका कुछ भी नहीं रहेगा। इसलिए मेरी तुच्छ शक्ति से जितना बन पड़ेगा मैं इस अन्याय का प्रतिवाद करूंगा। क्योंकि इस अन्याय को चलने दिया जाए तो देश के हिन्दू-मुसलमान किसी का कल्याण नहीं होगा।”(शरत समग्र-2, पृ. 620) इस वक्तव्य से स्पष्ट ध्वनित होता है कि शरतचन्द्र सांप्रदायिकता, देश की संस्कृति, साहित्य के प्रति कितने सचेत हैं। उनके भाषण से न केवल युगीन राजनीति बल्कि साहित्य और संस्कृति में भी चल

रहे षड्यंत्र का पता चलता है। अंग्रेज न केवल भौगोलिक बल्कि, भाषा और संस्कृति में भी हिन्दू-मुसलमानों में भेद पैदा करने की कोशिश कर रहे थे।

सन् 1920-35 तक का समय कांग्रेस की दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण है। 'कुटीरशिल्प' तथा 'असहयोग आंदोलन' इसी समय की देन है। शरतचन्द्र इस समय के साक्षी थे। 1890 ई. के एक सर्वेक्षण में स्वीकार किया गया है कि काष्ठ शिल्प तथा पीतल के बर्तन आदि गढ़ने, चटाई बुनने और मिट्टी के बर्तन बनाने के कामों के अलावा बंगाल के सभी दस्तकारों की अवनति हो रही थी।<sup>3</sup>

स्वदेशी आंदोलन का एक पहलू देश के अर्थ-व्यवस्था से जुड़ा है और दूसरा दस्तकारों के जीवन से। बंगाल में दस्तकार अधिक थे। इनका मुकाबला सीधा विदेशी 'मशीनी' माल से था। अतः इनकी अवनति होनी स्वाभाविक थी। ब्रिटेन के पूंजीपतियों ने बंगाल में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। भारतीय अर्थव्यवस्था पर अब विदेशी व्यापारियों का पूर्ण नियंत्रण था। ऐसी व्यवस्था से क्षुब्ध होकर आंदोलनकारियों ने विदेशी माल का 'बॉयकॉट' किया। बंगाल में कई जगह विदेशी सामानों की होली जलाई गयी। अपने 'संजीवनी' नामक मुख पत्र में कृष्ण कुमार मिश्र ने जनता का आह्वान किया, जिसका नारा, फ्रांसीसी क्रांति के प्रसिद्ध नारे के समान 'समानता, स्वतंत्रता, और बंधुत्व' का था। साथ ही उन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने के लिए जनता का आह्वान किया।<sup>4</sup> बंगाल समेत संपूर्ण भारतवर्ष में स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन को काफी लोकप्रियता मिली। लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि गीतों-नाटकों एवं जात्रा तक में इसकी चर्चा मिल जाती थी। इस प्रकार महात्मा जी द्वारा चलाया गया आंदोलन बंगाल से होता हुआ पूरे देश को प्रभावित कर रहा था।

शरतचन्द्र मात्र नारेबाजी के पक्षधर नहीं थे। उन्हें इस बात का भली-भांति इल्म था कि मात्र नारेबाजी से कुछ भी मिलने वाला नहीं है। कुछ पाने के लिए परिश्रमी और कर्मशील बनना अति आवश्यक है। अपने भाषणों में वे स्पष्ट कहते थे कि "केवल वंदेमातरम और महात्मा की जय बोलने से केवल गला कटेगा। पराधीनता की शिला केवल उतने से सुई भर भी नहीं हिलेगी।"<sup>5</sup>

शरतचन्द्र हिंसा के समर्थक नहीं थे। उग्रवाद को वे पसंद नहीं करते थे, किंतु यह भी सत्य है कि उनके मन में उग्रपंथी विप्लवियों के प्रति अपार श्रद्धा थी। ऐसे

विप्लवियों से वे मिलने तथा समय-समय पर उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करने में वे काफी रुचि लेते थे। कभी आलू बेचने वाला बनकर तो कभी भिखारी बनकर तो कभी कुछ बनकर ये विप्लवी उनसे अकसर मिलने आते थे, और शरतचन्द्र भी यथासाध्य उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करते थे। यदि कोई शरतचन्द्र से पूछता था कि आप हिंसावाद के समर्थक हैं या नहीं, तो शरतचन्द्र कहते थे "राजनीति और आदर्श में शायद अंतर हो सकता है लेकिन राष्ट्र के लिए जो लोग कार्य कर रहे हैं, उन सभी को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ चाहे वह विप्लवी हो अथवा हिंसावादी। दोनों ही मेरे लिए श्रद्धा के पात्र हैं।"<sup>6</sup>

नारी अधिकारों के प्रति शरतचन्द्र काफी सचेत थे उनके अनुसार नारी मुक्ति के बगैर देश की मुक्ति की कामना बेकार है, अधूरी है। अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में शरतचन्द्र ने नारी अधिकारों, नारी मुक्ति के प्रश्नों को ही अधिकतर चित्रित किया है। उनका मानना है कि नारी मुक्ति के बगैर देश की आजादी झूठी है, अधूरी है। वे कहते हैं, "जिस चेष्टा, जिस आयोजन में देश की लड़कियों का हाथ नहीं है, सहानुभूति नहीं है, उन्हें घर के कोने में बंद कर, केवल चरखा कातने के लिए बाध्य करके इतनी बड़ी वस्तु को प्राप्त नहीं किया जा सकता। लड़कियों को हम लोगों ने केवल लड़की बना रखा है, आदमी नहीं बनने दिया है।"<sup>7</sup>

शरतचन्द्र ने विदेशी शिक्षा का कभी विरोध नहीं किया है बल्कि, विदेशी शिक्षा से आयी जागरुकता और अपने अधिकारों के प्रति सजगता की प्रशंसा की है, किन्तु उसकी बाहरी चमक-दमक की आलोचना भी की है। जाति, संप्रदाय या धार्मिक संकीर्णता के स्थान पर उन्होंने इंसानियत को महत्त्व दिया है। शरतचन्द्र विदेशी शिक्षा का अर्जन विदेशी बनकर नहीं बल्कि स्वदेशी रहकर ही करने के पक्षपाती हैं। ऐसे शिक्षण पद्धति का उन्होंने विरोध किया है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारे ऊपर शासन कर रहा हो। शरत बाबू उस बंगाली भद्रलोक पर क्रोधित होते हैं जो विदेशी शिक्षा का अध्ययन करते-करते स्वयं भी विदेशी हो चले हैं। वे ऐसी शिक्षण पद्धति के हिमायती हैं जो सर्वसुलभ हो। उन्हीं के शब्दों में "दुख कभी न दूर होगा जब तक उस शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जा सकती, जिससे देश का बर्हिमुखी वीतश्रमपन फिर अंतर्मुखी और आत्मस्थ नहीं होता। क्या मन का मिलन, क्या शिक्षा का मिलन, यह केवल बराबरी वालों के ही आदान-प्रदान से हो सकता है, इस तरह

कंगालों की तरह, भिखमंगों की तरह कभी नहीं हो सकता। होने पर भी यह एक धोखेबाजी होगी। उसमें कल्याण नहीं होगा, गौरव नहीं होगा। इससे देश को केवल हीनता और लांछन ही मिलेगा, मनुष्यत्व कभी न मिलेगा।”<sup>8</sup>

अपने भाषणों में शरतचन्द्र ने पश्चिमी सभ्यता की जमकर आलोचना की है। शरतचन्द्र का विरोध उस सभ्यता से है जो जबर्दस्ती भारतीयों पर लादी जा रही है। वे कहते हैं कि पश्चिमी सभ्यता हमारे मुंह के निवाले को छीनकर ले जा रही है। शरतचन्द्र चरखा कातते थे किंतु उनके चरखा कातने का कारण अर्थोपार्जन नहीं था। न ही उन्हें अपना स्वदेशी भाव सबको दिखाना था। वे चरखा गांधी जी के प्रति अपनी श्रद्धा और प्रेम दर्शाने के लिए कातते थे। इस बात को उन्होंने स्वयं महात्मा जी के समक्ष स्वीकार किया है। स्वदेशी चरखे में नहीं बसा है स्वदेशी एक भाव है जो हृदय के अंदर बसा होना चाहिए।

TH-19395



## प्रेमचंद की व्यक्तिगत हिस्सेदारी

प्रेमचंद का असली नाम 'धनपत राय' था। आरंभ में वे नवाब राय के नाम से लिखते थे। प्रेमचंद नाम से उन्होंने बाद में लिखना शुरू किया। उनका जन्म 31 जुलाई 1880 ई. को वाराणसी जिले में लमही नामक गांव में हुआ था। प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से सम्मानित किया गया है। यह सम्मान शरतचन्द्र का दिया हुआ है। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परंपरा का विकास किया जिस पर पूरी शती का साहित्य आगे चल सका। इसने आने वाले पीढ़ी को गहराई तक प्रभावित किया। उन्होंने हिन्दी साहित्य ही नहीं पूरे साहित्य जगत में यथार्थवादी साहित्य की नींव रखी। प्रेमचंद का लेखन हिन्दी साहित्य की विरासत है, इनके बिना हिन्दी साहित्य का विकास संभव नहीं था। वे एक सफल लेखक, देशभक्त, कुशल वक्ता और जिम्मेदार संपादक होने के साथ-साथ एक गहरे संवेदनशील रचनाकार थे। बाद के रचनाकार जिसमें यशपाल, मुक्तिबोध तक शामिल हैं, को प्रेमचंद के रचनाकर्म ने दिशा प्रदान की। प्रेमचंद की आरंभिक शिक्षा उर्दू, फारसी में हुई। 1898 ई. में मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हुए। नौकरी के साथ-साथ उन्होंने पठन-पाठन भी जारी रखा। उन्होंने 1910 ई. में इंटर पास किया और 1919 ई. में बी.ए.। बाद में वह स्कूलों के डिप्टी सब इंस्पेक्टर नियुक्त हुए। वे आरंभ में आर्य समाज से काफी प्रभावित थे, जो उस समय एक बड़ा धार्मिक, सामाजिक संगठन था। 1910 ई. में उनकी रचना 'सोजेवतन' अपनी देशविक्रि विचारों के कारण काफी विवादों के घेरे में रही। प्रेमचंद कुछ पत्रिकाओं में संपादन का कार्य भी किए थे (जमाना, हंस)। प्रेमचंद ने 12 उपन्यास और 300 से अधिक कहानियों का सृजन किया। इसके अलावा उन्होंने कुछ नाटक लिखे हैं और अनुवाद भी किए हैं। अपने तैंतीस वर्षों के रचनात्मक जीवन में वे साहित्य की ऐसी विरासत सौंप गये जो गुणों की दृष्टि से अमूल्य है और आकार की दृष्टि से असीमिता।

प्रेमचंद की रचना दृष्टि, विभिन्न साहित्य रूपों में अभिव्यक्त हुई। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख,

संपादकीय, संस्मरण, आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की किन्तु प्रमुख रूप से वे कथाकार हैं। उन्हें अपने जीवन काल में ही बड़ी ख्याति मिल गयी थी। वैसे तो उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है, पर जो यश उनको कथा साहित्य से मिला उतना अन्य विधाओं से नहीं। यह स्थिति हिंदी और उर्दू भाषा में समान रूप से दिखाई देती है। उन्होंने 'रंगभूमि' तक के सभी उपन्यास पहले उर्दू भाषा में लिखे थे। और 'कायाकल्प' से लेकर अपूर्ण उपन्यास 'मंगलसूत्र' तक सभी उपन्यास मूलतः हिन्दी में लिखे। प्रेमचंद कथा-साहित्य में उनके उपन्यासकार का आरंभ पहले होता है। 'असरारे मआबिद' उनका पहला उर्दू (अपूर्ण) उपन्यास है। इसके बाद प्रेमचंद की ऐतिहासिक और प्रेम संबंधी कहानियां भी काफी लोकप्रिय हुईं।

कला के शिखर पर पहुंचने के लिए प्रेमचंद ने अनेक प्रयोग किये। जिस युग में प्रेमचंद ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न कोई प्रगतिशीलता का ठोस मॉडल। उनके सामने केवल बांग्ला साहित्य था। वे बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरतचन्द्र और रूसी साहित्यकार टॉलस्टॉय से काफी प्रभावित थे। अपने जीवन के अंतिम समय में उन्होंने गोदान जैसी कालजयी कृति की रचना की। यह रचना आधुनिक क्लासिक का उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। अपनी रचनाओं को प्रेमचंद ने खुद रचा, गढ़ा और आकार दिया। जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था, तब उन्होंने कथा साहित्य द्वारा हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं को जो अभिव्यक्ति दी उसने सियासी सरगर्मी को, जोश को और आंदोलन को उभारा और उसे ताकतवर बनाया। साथ-साथ इससे उनका लेखन भी ताकतवर बनता चला गया। 1936 ई. में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप में संबोधन किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आंदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। प्रेमचंद ने हिन्दी में कथा साहित्य की एक परंपरा को जन्म दिया। बाद की पीढ़ी उनके पदचिह्नों पर आगे बढ़ी। प्रेमचंद एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को देखा और उनको कहानी के माध्यम से पहली बार लोगों के समक्ष रखा। उन्होंने सामाजिक समस्याओं को अपने कथा साहित्य में स्थान दिया। प्रेमचंद की कथाओं में दलित, नारी आदि सभी आते हैं। ये सभी विषय आगे चलकर हिन्दी साहित्य के बड़े

विमर्श बने।

अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेमचंद भारतीय राजनीति से गहरे रूप से जुड़े हुए थे। यद्यपि शरतचन्द्र की तरह वह कोई पदधारी नहीं थे, किन्तु कांग्रेस में उनके योगदान को कोई भी अनदेखा नहीं कर सकता है। सन् 1920-21 में गांधी जी के नेतृत्व में पूरे देश भर में असहयोग आंदोलन तीव्र हो उठा था। इस आंदोलन के शुरू होने के कई कारण थे। 1. कांग्रेस में पुनः विभाजन, 2. रौलेट एक्ट के विरुद्ध प्रतिक्रिया, 3. जलियांवाला बाग हत्याकांड, बाद में इस आंदोलन के साथ खिलाफत आंदोलन को भी शामिल कर लिया। असहयोग आंदोलन के निम्न कार्यक्रम थे—

- i) समस्त पदवियों के अवैतनिक पदों का परित्याग करना।
- ii) स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के नामांकित पदों से त्यागपत्र देना।
- iii) सरकारी पदाधिकारियों के द्वारा आयोजित तथा उनके सम्मान में किए गए उत्सवों का बहिष्कार।
- iv) सरकारी एवं सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में बच्चों के प्रवेश को रोकना।
- v) वकीलों तथा वादी-प्रतिवादियों द्वारा न्यायालयों का बहिष्कार।
- vi) मोसोपोटामिया में भारतीय सैनिक सेवाओं के प्रवेश का विरोध।
- vii) 1919 ई. के कानून द्वारा संगठित की जाने वाली परिषदों के लिए उम्मीदवारी तथा मतदान करने का बहिष्कार।
- viii) विदेशी माल का बहिष्कार।
- ix) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा उनका अधिकाधिक उपयोग।
- x) लोक न्यायालयों की स्थापना व उनमें पंचायती निर्णयों से विवादों को हल करना।
- xi) हथकरघा तथा कुटीर उद्योगों के विकास द्वारा स्वदेशी माल का उपयोग।
- xii) सांप्रदायिक एकता का विकास।
- xiii) छुआछूत के भेदभाव का अंत करना तथा
- xiv) सर्वत्र अहिंसात्मक ढंग से आचरण करते हुए उक्त कार्यक्रम को समाप्त करना।<sup>9</sup>

प्रेमचंद पर असहयोग आंदोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा। उन्होंने फरवरी 1921 ई. में अपनी सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। अपने मित्र मुंशी दयानारायण निगम को इस्तीफे की बात बताते हैं। अपने इस्तीफे का जिक्र प्रेमचंद के इन शब्दों



में करते हैं, “यह सन् 1920 की बात है। असहयोग आंदोलन जोरों पर था। जलियांवाला बाग का हत्याकांड हो चुका था। उन्हीं दिनों महात्मा गांधी ने गोरखपुर का दौरा किया। गाजी मियां के मैदान में अच्छा प्लेटफार्म तैयार किया गया। दो लाख से कम का जमाव न था। क्या शहर, क्या देहात, श्रद्धालु जनता दौड़ी चली आती थी। ऐसा समारोह अपने जीवन में मैंने कभी न देखा था। महात्मा जी के दर्शनों का यह प्रताप था, कि मुझ जैसा मरा हुआ आदमी भी चेत उठा। उसके दो ही चार दिन बाद मैंने अपनी 20 साल की नौकरी से इस्तीफा दे दिया।”<sup>10</sup>

सन् 1921 में ‘जमाना’ में प्रेमचंद की कहानी ‘लाल-फीता’ प्रकाशित हुई। कहानी का नायक हरि बिलास ने भी सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था। कहानी में इस्तीफे के शब्द लगभग प्रेमचंद के अपने इस्तीफे के शब्द प्रतीत होते हैं। शब्द कुछ इस प्रकार है “श्रीमानजी, मेरा विश्वास है कि राजनीतिक व्यवस्था ईश्वरीय इच्छा का प्रतिरूप है, और उसके कानून भी दया, सत्य और न्याय पर कायम है। मैंने पंद्रह साल तक सरकार की सेवा की और अपने सामर्थानुसार अपने कर्तव्य का दयानतदारी से पालन किया। संभव है कि किसी समय अफसर मुझसे खुश न रहे हों, क्योंकि मैंने व्यक्तिगत आदेशों को कभी अपना कर्तव्य नहीं समझा। जब कभी कानून और सरकार के हुक्म में विरोध हुआ मैंने कानून का पथ ग्रहण किया। मैं सदा सरकारी नौकरी को देश सेवा का माध्यम समझता रहा, लेकिन सरकुलर नं... में जो आदेश दिए गए हैं, वह मेरी आत्मा और असूल के विरुद्ध हैं और मेरे विचार में उनमें असत्य का इतना दखल है कि मैं उनका पालन करने में असमर्थ हूं। वे आदेश प्रजा की स्वतंत्रता के शत्रु और उसकी राजनैतिक जागृति के घातक हैं। इस स्थिति से सरकार से संबंध स्थापित रखना देश और राष्ट्र के लिए हानिकारक है। अन्य अधिकारों के अतिरिक्त प्रजा को राजनीतिक संघर्ष का अधिकार भी प्राप्त है, और चूंकि सरकार इस अधिकार को कुचलने में तत्पर है, इसलिए मैं हिन्दुस्तानी होने के नाते यह सेवा पालन करने में असमर्थ हूं और प्रार्थना करता हूं कि मुझे शीघ्र अतिशीघ्र इस पद से मुक्त किया जाए।”

नौकरी से इस्तीफा देने के बाद प्रेमचंद सक्रिय रूप से कांग्रेस के कार्य कलापों में रुचि लेने लगे। वे अब कांग्रेस में होने वाली मीटिंगों में बराबर भाग लेते थे, इस दौरान प्रायः उनको घर लौटने में देर हो जाती थी। शिवरानी देवी लिखती

हैं, “कांग्रेस की मीटिंग रोजाना चल रही थी, उसमें भी वे शरीक होते। ‘मीटिंग’ से लौटने में कभी-कभी रात के 10 बज जाते थे।”<sup>11</sup> शरतचन्द्र की तरह प्रेमचंद भी पूर्ण स्वराज के पक्षधर थे। वे कहते हैं, “भारत के उद्धार का अगर कोई उपाय है, तो वह स्वराज्य है। जिसका आशय है— मन और वचन की पूर्ण स्वाधीनता। प्रेमचंद के स्वराज्य का अर्थ था किसान, मजदूर, जनता का राजा”।<sup>12</sup> ‘डोमिनियन स्टेट्स’ का प्रेमचंद ने हमेशा से ही विरोध किया है। वे कहते हैं “..... स्वराज्य में मजदूरों और किसानों की आवाज उनका रक्त चूसने न देगा। डोमिनियन का अर्थ उनके लिए यही है कि दो चार गवर्नरियां, दो चार बड़े-बड़े पद उन्हें और मिल जाएंगे। उनका ‘डोमिनियन स्टेट्स’ इसके सिवा और कुछ नहीं है। ताल्लुकदार और राजे इसी तरह गरीबों को चूसते चले जाएंगे। स्वराज्य गरीबों की आवाज है, डोमिनियन गरीबों की कमाई पर मोटे होने वालों की।”<sup>13</sup> प्रेमचंद का संपूर्ण साहित्य उनके साम्राज्यवादी, सामंतवादी, पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध प्रतिक्रिया के स्वर को उजागर करता है। उस समय भारतीय जनता इन तीनों के तिहरे शोषण-चक्र में पिस रही थी। भारतीय सामंतवाद, पूंजीवाद को ब्रिटिश सरकार का संरक्षण भी प्राप्त था। प्रेमचंद के लिए स्वाधीनता एक व्यापक अर्थों में है। वह किसान, मजदूरों की मुक्ति को राष्ट्रीयता के साथ जोड़कर देखते हैं। उनका मानना था कि स्वाधीनता का आंदोलन केवल साम्राज्यवाद विरोध के मोर्चे में ही न लड़ा जाए, जैसा कि हो रहा था, वह सामंतवाद और पूंजीवाद विरोधी मोर्चे पर भी समानांतर लड़ा जाए।

प्रेमचंद पाश्चात्य संस्कृति के अंध अनुकरण के हमेशा खिलाफ रहे। जिस देश में निज संस्कृति के प्रति उपेक्षा भाव बढ़ता है वह देश मृतवत हो जाती है। प्रेमचंद को इस बात का इल्म था। अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करना और अंग्रेजी भाषा का गुलाम बनना इन दोनों के फर्क को प्रेमचंद भारतीय नवयुवकों को समझाना चाहते थे। अंग्रेजी भाषा के गुलामों को प्रेमचंद ने ‘सेवासदन’ के एक पात्र बिह्लदास के द्वारा जागृत करने की कोशिश की है। “आपकी अंग्रेजी शिक्षा ने आपको ऐसा पददलित किया है कि जब तक यूरोप का कोई विद्वान किसी विषय के गुण-दोष प्रकट न करे, तब तक आप उस विषय की ओर से उदासीन रहते हैं। आप उपनिषदों का आदर इसलिए नहीं करते हैं कि वह स्वयं आदरणीय है, बल्कि इसलिए करते हैं कि ब्लावेदस्की और मैक्समूलर ने उनका आदर किया है। आपमें अपनी बुद्धि से काम

लेने का लोप हो गया है।... यह मानसिक गुलामी उस भौतिक गुलामी से कहीं गई गुजरी है। आप उपनिषदों को अंग्रेजी में पढ़ते हैं, गीता को जर्मन में, अर्जुन को अर्जुना, कृष्ण को कृष्णा कहकर अपने स्वभाषा ज्ञान का परिचय देते हैं।”<sup>14</sup> ‘मिस पद्मा’, ‘सोहाग का शव’, ‘उन्माद’ आदि कहानियों में भी प्रेमचंद ने पश्चिमी संस्कृति के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। ‘उन्माद’ का मनोहर इंग्लैंड जाकर अपनी पत्नी के रहते हुए एक फैशनेबुल रेस्ट्रा की लड़की ‘जेनी’ से विवाह कर लेता है। लगभग यही स्थिति ‘सोहाग का शव’ में केशव के साथ होता है। ‘मिस पद्मा’ में प्रो. प्रसाद (जो कि विदेशी संस्कारों से प्रभावित था) को मुक्त भोग के उपासक रूप में चित्रित किया गया है।

चौरीचौरा में हिंसक घटना होने के बाद महात्माजी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। देशव्यापी स्वतंत्रता संग्राम को इससे गहरा आघात पहुंचा। लोगों का मनोबल टूट रहा था। अंग्रेजों ने इस मौके का फायदा उठाया और स्वाधीनता आंदोलन में कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले हिन्दू और मुसलमानों के बीच झगड़े भड़काने लगे। मुद्दे पुराने थे – मस्जिदों के सामने बाजा बजाना और मंदिरों में मांस फेंकवाना। प्रेमचंद ने अपनी कहानी ‘मंदिर और मस्जिद’ में इस षड्यंत्र का खुलासा किया। 1922-27 ई. तक की अवधि में पूरे देश में साम्प्रदायिकता फैल चुकी थी। मुसलमानों ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाना शुरू किया, बदले में आर्य समाज ने भी तुरंत शुद्धि आंदोलन चलाया। प्रेमचंद की कहानी ‘मंत्र’ इसी घटना की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है।

फरवरी 1930 ई. में सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन से प्रेमचंद को काफी उम्मीदें थीं। ‘हंस’ के प्रथम अंक के संपादकीय में उन्होंने लिखा है – “हंस के लिए यह परमसौभाग्य की बात है कि उसका जन्म ऐसे शुभ अवसर पर हुआ है, जब भारत में एक नये युग का आगमन हो रहा है, अब भारत पराधीनता की बेड़ियों से निकलने के लिए तड़पने लगा है.... ‘हंस’ का ध्येय आजादी की जंग में योगदान देना है।” लगभग इसी समय नमक आंदोलन शुरू हुआ। प्रेमचंद इसमें सक्रिय रूप से भाग लेना चाहते थे। इस आंदोलन में भाग लेते हुए जेल तक जाना चाहते थे। उन्होंने दयानारायण निगम को इस संबंध में पत्र भी लिखा। अपने पत्र में वे लिखते हैं – “यहां की हालत तो आपको मालूम ही है। शहर फौजी कैंप बना हुआ

है। बिलकुल बेजरूरत – एक बात और अर्ज करूं, अगर कहीं गिरफ्तार हो जाऊंगा या डंडे पड़ गए और रूह काबिले उसरी से (पंचभूत के शरीर से आत्मा) पर बाज कर जाए तो मेरे परमादगान (पीछे रहने वालों) की थोड़ी देखभाल करते रहिएगा। आज मुहर्म्म का दिन है। देखें खैरियत से गुजरती है या कल मार्शल लॉ जारी होता है।” (प्रेमचंद एक कृती व्यक्तित्व, जैनेन्द्र कुमार) संयोगवश उनकी पत्नी ने ऐसा होने नहीं दिया, कारण प्रेमचंद उन दिनों काफी अस्वस्थ चल रहे थे, अतः उनकी पत्नी ने यह खत छिपा लिया था। इस तरह जेल जाने की साध प्रेमचंद के मन में ही रह गयी। उनकी इस कमी को सन् 1930 ई. में उनकी सहधर्मिणी ने पूरा कर दिखाया। इस विषय में श्री जैनेन्द्र कुमार को एक पत्र में प्रेमचंद ने लिखा था – “मेरी पत्नी भी पिकेटिंग के जुर्म में दो महीने की सजा पा गयी हैं। कल फैसला हुआ है। इधर पंद्रह दिनों से मैं इसी में परेशान रहा। मैं जाने का इरादा कर ही रहा था, पर उन्होंने खुद जाकर मेरा रास्ता बंद कर दिया।”<sup>15</sup> 12 जनवरी, 1931 के एक पत्र में भी उन्होंने लिखा, “हां, पत्नी जी तो आ गयी मगर शायद फिर जायें। अभी उन्हें संतोष नहीं। सारा स्वराज्य एक ही बार ले लेंगी, किस्तों में नहीं चाहती।”<sup>16</sup>

इस प्रकार, अगर दोनों कलाकारों की व्यक्तिगत हिस्सेदारी पर विहंगावलोकन करें, तो हम देखते हैं कि दोनों लेखक सक्रिय रूप से स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े थे। प्रेमचंद और शरतचन्द्र दोनों ही कांग्रेस के ‘मेम्बर’ थे। शरतचन्द्र तो सभापति भी रह चुके थे। दोनों लेखक ‘पूर्ण स्वराज्य’ के पक्षधर थे। ‘सभापति’ होने के कारण शरतचन्द्र की व्यक्तिगत हिस्सेदारी अधिक बढ़ जाती है, किन्तु प्रेमचंद की भूमिका को कभी भी कम या नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। देश की राजनीतिक अवस्था से ये दोनों रचनाकार बराबर जुड़े रहे। ‘स्वाधीनता’ के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रेमचंद तो कारावास की यातना तक सहने के लिए आतुर हो उठे थे। उधर शरतचन्द्र बराबर अपने जोशीले भाषणों के कारण समकालीन आलोचकों के घेरे में रहे।

शरतचन्द्र और प्रेमचन्द्र दोनों ने ही राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक मुक्ति को भी ध्यान में रखे हैं। अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, रूढ़ियां आदि ऐसे कुछ प्रश्न थे जिसमें दोनों प्रांत झुलस रहे थे। दोनों ही लेखक साम्राज्यवाद के साथ-साथ सामंतवाद और पूंजीवाद से भी लोहा ले रहे थे।

- 
- <sup>1</sup> डॉ. शंभुनाथ, भारतीय नवजागरण और भारतेन्दु: उद्धृत इग्नू नोटस, आधुनिक काव्य विवेचना, पृ. 2-3
  - <sup>2</sup> सं. विश्वनाथ मुखर्जी, भारत समग्र-II, पृ. 617
  - <sup>3</sup> आर. डब्ल्यू कॉलिन, रिपोर्ट ऑन दि एक्जिस्टिंग आर्ट्स एंड इंडस्ट्रीज ऑफ बंगाल, 1890, पृ. 5
  - <sup>4</sup> सुशोभन सरकार, बंगला नवजागरण : अनु: एस.एन. कानूनगो, पृ. 51
  - <sup>5</sup> सं. विश्वनाथ मुखर्जी, शरत समग्र- 2, पृ. 618
  - <sup>6</sup> सं. विश्वनाथ मुखर्जी, शरत समग्र-2 पृ. 618
  - <sup>7</sup> सं. विश्वनाथ मुखर्जी, शरत समग्र-2, पृ. 622
  - <sup>8</sup> सं. विश्वनाथ मुखर्जी, रचनावली-7, पृ. 269
  - <sup>9</sup> एम.एल. धवन, भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का उद्भव और विकास, पृ. 180-181
  - <sup>10</sup> हंसराज रहबर, प्रेमचंद जीवन और कृतित्व, पृ. 87
  - <sup>11</sup> शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में, पृ. 84
  - <sup>12</sup> धर्मयुग, अगस्त, 1980, पृ. 11
  - <sup>13</sup> सं. प्रेमचंद हंस, मार्च, 1930
  - <sup>14</sup> प्रेमचंद सेवासदन, पृ. 244-245
  - <sup>15</sup> जैनेन्द्र कुमार, प्रेमचंद एक कृति व्यक्तित्व, पृ. 89
  - <sup>16</sup> वही, जैनेन्द्र कुमार, पृ. 59